Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.06, June,2025

श्रीमद्भगवद्गीता का वर्तमान समाज में व्यक्तित्व निर्माण की उपादेयता

सतीश कुमार वर्मा *
(शोध छात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)
डॉ. अभिषेक सेंगर(असि. प्रोफेसर)
शिक्षा संकाय, महाराणा प्रताप राजकीय पी.जी. कॉलेज,हरदोई

****

शोधसार: *श्रीमद्भगवद्गीता, जो महाभारत का एक अंश है, भारतीय दर्शन और आध्यात्मिकता का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से बल्कि व्यक्तित्व निर्माण और जीवन प्रबंधन के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। वर्तमान समाज में, जहां तनाव, असंतोष और नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है, गीता का संदेश अत्यंत प्रासंगिक है। गीता में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के माध्यम से व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार और आत्म-नियंत्रण की शिक्षा दी गई है। यह सिखाती है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन निष्काम भाव से करना चाहिए, जिससे मानसिक शांति और आत्मिक संतुष्टि प्राप्त होती है। गीता का यह संदेश व्यक्ति को तनाव और चिंता से मुक्त करता है और उसे एक संतुलित और सकारात्मक जीवन जीने की प्रेरणा देता है। इसके अलावा, गीता में वर्णित नैतिक मूल्य और धैर्य, सहनशीलता, और समर्पण जैसे गुण व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारते हैं। यह समाज में सहयोग, सद्भाव और न्याय को बढ़ावा देने में मदद करती है। इस प्रकार, श्रीमद्भगवद्गीता वर्तमान समाज में व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक उन्नति के लिए एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक है।*

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार यह सृष्टि शाश्वत, अज, अव्यक्त ब्रह्म का व्यक्त रूप है। पुरुषोत्तम अव्यक्त श्री भगवान अपने चेतन व जड़ प्रकृति के माध्यम से सम्पूर्ण सृष्टि में विविध रूपों में व्यक्त होते हैं। व्यक्त शब्द से व्यक्ति शब्द बना है। दार्शनिक अर्थ में व्यक्ति का अर्थ केवल मानव ही नहीं अपितु संसार के सभी जीव एवं जड़, अव्यक्त की अभिव्यक्ति होने के कारण व्यक्ति हैं। व्यक्ति से बनी भाववाचक संज्ञा 'व्यक्तित्व' है। अतः गीता ज्ञान के आलोक में यह कहा जा सकता है कि अव्यक्त ब्रह्म के शाश्वत अंश एवं त्रिगुणात्मक प्रकृति के संयोग से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। श्रीमद्भगवद्गीता मौलिक स्वरूप में तत्वज्ञान शास्त्र है। गीता का यह ज्ञान बोधगम्य, सरल एवं सरस है। गीता में यथार्थ ज्ञान के आलोक में, यथार्थ सत्य के अनुरूप मूल्यों के आत्मसातीकरण एवं तद्तारतम्य के आचरण को अपनाने का उपदेश है। श्रीमद्भगवद्गीता ज्ञान, मूल्य एवं आचरण के वाँछित सत्य स्वरूप के विषय में बोध भी कराती है, उनमें व्यवहारिक सामंजस्य करना सिखाती है।

मुख्यशब्द: *श्रीमद्भगवद्गीता, त्रिगुणात्मक, सर्वभूतात्मा, व्यक्तित्व, निर्माणशास्त्र, वर्तमान समाज*

****

INTRODUCTION

श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्ति के व्यक्तित्व से सम्बंधित सभी प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम है। यह व्यक्ति की भावनाओं का शोधन एवं नियमन करके सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व निर्माण करने वाला शास्त्र है। अर्जुन को निमित्त बनाकर, उनकी कायरता, भीरुता एवं भ्रम को नष्ट करने हेतु उपदिष्ट श्रीमद्भगवद्गीता भूत, वर्तमान एवं भविष्य में व्यक्त व अव्यक्त व्यक्तियों के व्यक्तित्व निर्माण की मार्गदर्शिका है। श्रीकृष्ण विशुद्ध ज्ञान के अधिकरण हैं। जन्म-मृत्यु चक्र में व्यक्त अव्यक्त, भूत, वर्तमान व भविष्य के सभी जीवों को वे जानते हैं। तान्यहं वेद सर्वाणि (4.5) अर्थात "मैं सबको जानता हूँ।" अतः गीता का

उपदेश केवल महाभारत कालीन व्यक्ति के लिये नहीं है, यह सभी कालों में उत्पन्न व्यक्तियों हेतु है। श्रीकृष्ण सबको जानते हैं, अतः सबके व्यक्तित्व सम्बंधी समस्याओं का समाधान उनके उपदेशों में है। गीता का उपदेश व्यक्तित्व पतन एवं विखण्डन दशा को प्राप्त अर्जुन के कायरतापूर्ण, पलायनवादी मनोभावों को नष्ट करके उसे धीर एवं स्वधर्म प्रवृत्त बनाने हेतु है। यह सम्पूर्ण शास्त्र व्यक्तित्व निर्माणशास्त्र है। शोकसंविग्नमानसः (1.47) शोक से उद्विग्न मानस वाले अर्जुन पर गीता का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह भीरू व्यक्तित्व से दृढ़निश्चयी अपराजेय व्यक्तित्व युक्त हो गया है।

आत्म-जागरूकता और आत्म-साक्षात्कार

गीता उपदेश को आत्मसात करने के पश्चात अर्जुन घोषणा करते हैं-

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।

(18.73)

अर्थात्- "हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" अर्जुन के व्यक्तित्व विखण्डन का कारण अज्ञान जनित मोह था जिसकी वजह से वह अपनी क्षमताओं एवं पौरुष को विस्मृत कर चुका था। श्रीकृष्ण से ज्ञान प्रसाद मिलने पर उसका मिथ्याभ्रम टूट गया, उसका मोह नष्ट हुआ तथा सभी संदेहों को नष्ट करके वह अपने वास्तविक व्यक्तित्व में स्थित हो गया। अर्जुन की भाँति हमारे व्यक्तित्व विखण्डन का कारण भी यही है कि हम अज्ञानवश मोह में पड़कर स्वयं के वास्तविक स्वरूप को भूल जाते हैं तथा अपनी क्षमताओं के प्रति संदेहशील होकर अस्थिर व्यक्तित्व युक्त हो जाते हैं। गीता में व्यक्ति एवं व्यक्तित्व की अवधारणा भ्रामक सूचनाओं पर आधारित नहीं है अपितु वास्तविक युक्त-युक्त तत्वज्ञान पर आधारित है। गीता का अवलम्बन लेकर व्यक्ति अपने वास्तविक व्यक्तित्व एवं उसकी शक्ति को पहचान सकता है तथा सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त विराट पुरुष के अखण्ड व्यक्तित्व से तादात्म स्थापित कर अक्षर व्यक्तित्व युक्त हो सकता है। व्यक्तित्व में नकारात्मकता, पतन, भीरुता का एकमात्र कारण आत्मविस्मरण एवं काया सम्बन्ध मुग्धता है। शोक एवं शोक के कारण काम, क्रोध, लोभ आदि को श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्ति के योग्य नहीं मानती। मनुष्य इस दुष्चक्र में फँसकर पतित होने के लिये नहीं बना है। मानव जन्म समस्त बंधनों, दुर्भावों, दुरावस्था से मुक्ति हेतु है। यह मुक्त व्यक्तित्व तभी संभव है जब हम जीवन की वास्तविकता को समझें तथा उस समझ के अनुसार भक्तिमय, कर्मरत हों एवं अपने आनन्दमय स्वरूप में प्रतिष्ठित हों। गीता का उपदेश व्यक्तिगत एवं सामूहिक मनोशारीरिक कल्पान्तरण की क्षमता रखता है। "यदि कोई गीता की कतिपय शिक्षाओं

का पालन नित्य करे, तो उसे लाभकारी अनुभव प्राप्त होंगे। प्रतिदिन वह एक अच्छा मनुष्य होता जायेगा। वह अपनी समस्याओं पर औरों की अपेक्षा अधिक सुलभता से विजय प्राप्त कर सकेगा। उसे जीवनभर की प्रेरणा के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत प्राप्त होगा। उसकी शक्ति, बुद्धिमत्ता तथा आंतरिक स्थिरता बढ़ती जायेगी" (बुधानन्द, 2010, p. 2-3) श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्ति एवं उसके व्यक्तित्व के विषय में शाश्वत सत्य, व्यक्तित्व निर्माण हेतु करणीय व अकरणीय कर्म तथा असंदिग्द निर्देश प्राप्त होते हैं। गीता दर्शन परम व्यवहारिक एवं मनोवैज्ञानिक है।

यह आत्मज्ञान हेतु व्यक्ति को जीवन संदर्भ से दूर होने को नहीं कहती अपितु यह हमारे वास्तविक 'स्व' का पोषण करते हुये जीवन के प्रत्येक आयाम का निरपेक्ष अवलोकन करने की क्षमता विकसित करके हमारे दृष्किोण में मौलिक सकारात्मक परिवर्तन लाकर व्यक्तित्व को निखारती है। हमारे व्यक्तित्व के मुख्यतः दो पहलू हैं सांसारिक वाह्य परिवेश एवं आत्मिक जगत। गीताज्ञान से प्रेरित होकर यह कहा जा सकता है कि वास्तविक विकसित व्यक्तित्व वह है जो वाह्य सांसारिक अभ्युदय व समृद्धि तथा आत्म अभिज्ञान में संतुलन स्थापित कर सके। व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं जीवन की पूर्णता सांसारिक अभ्युदय एवं अलौकिक निःश्रेयस द्वै की प्राप्ति में है।

व्यक्ति जब स्वयं के व्यक्तित्व को इंद्रियानुभाविक मान लेता है तथा स्वयं का अस्तित्व ज्ञानेंद्रियों व कर्मेन्द्रियों तक सीमित समझता है तो वह शरीर एवं शरीर से सम्बंधित पदार्थों में आसक्त होकर लौकिक फलाकांक्षा से कर्मरत होता है। वाँछित फल प्राप्ति में स्वाभाविक बाधा उत्पन्न होने पर वह क्रोध, आवेग, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावों से आवेशित हो अपने व्यक्तित्व को क्षरित कर लेता है तथा हताश व निराश हो जाता है। व्यक्तित्व का यह कायिक भाव लौकिक अभ्युदय एवं पारलौकिक निःश्रेयस दोनों में ही बाधक हैं। व्यक्तित्व के इस पतन का मूल कारण 'स्व' के बारे में मिथ्या अज्ञान है। गीता हमारा परिचय हमारे वास्तविक अतुल व्यक्तित्व से कराती है, जिसे गीता की भाषा में आत्मज्ञान कहते हैं। हमारे व्यक्तित्व परमात्मतत्व की अभिव्यक्ति हैं। अक्षर, अजर, अमर, अमृतत्वयुक्त व्यक्तित्व है हमारा। सांसारिक संघर्ष, परिस्थितियाँ परिवर्तनशील हैं। अतः गीता का संदेश है कि हम परिवर्तनशील परिस्थितियों के दास नहीं हैं। हमें सदैव अपने व्यक्तित्व की आनन्दमय महिमा में रहना चाहिये। इसके लिये 'स्व', 'स्वभाव' एवं संसार का यथार्थ ज्ञान आवश्यक है। हमारा वास्तविक 'स्व' अव्यय, अपरिमेय आत्मा है। सत्यचेतना व आनन्द हमारा मौलिक स्वभाव है। यदि हम अपने स्वभाव के अनुरूप अपने व्यक्तित्व को ढ़ालने का प्रयास करें तो हमारा व्यक्तित्व निःशंक व निष्कलंक हो सकेगा। अव्यय आत्मा होने के बावजूद हम मिथ्या अहं के

कारण विनाशशील, व्ययशील, परिवर्तनशील, असार संसार के लोभ व आसक्ति में पड़कर अपने व्यक्तित्व को अनेक दुर्बलताओं से युक्त बना लेते हैं।

नैतिक मूल्यों की शिक्षा

अर्जुन की कायरता को उसके स्वभाव व गरिमा के प्रतिकूल बताते हुये श्रीकृष्ण ने उन्हें निश्चयात्मक निर्देश दिया है-

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ।। (2.3)

"हे पृथा-पुत्र, तुम कायरता को प्राप्त न हो। यह तुझको शोभा नहीं देता। हे परन्तप, इस क्षुद्र कायरता का परित्याग कर उठो। हम सभी पार्थ हैं क्योंकि अर्जुन की भाँति हम भी पृथ्वी से उत्पन्न हैं, पार्थिव हैं। हम भी परंतप हैं क्योंकि हमारी शक्ति व सामर्थ्य का स्रोत अक्षय, असीम परमात्मा है। अतः श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्तित्व सम्बंधी किसी प्रकार की हीनता को हमारे वास्तविक स्वरूप के प्रतिकूल मानती है। यह मिथ्या अहं का नाश करके 'सोऽहं' भाव जागृत करने वाली संजीवनी है। इसका श्रद्धापूर्वक सेवन करने वाला अपने अखण्ड-मण्डलाकार व्यक्तित्व को पहचान सकता है। सभी प्रकार की दीनता एंव हीनता से व्यक्ति एवं समाज को मुक्ति दिलाने वाला शास्त्र श्रीमद्भगवद्गीता है। श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेशों के स्वल्प श्रद्धायुक्त अभ्यास से हमारे व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन आने लगते हैं। यह पारसमणि है जिसके मानसिक संसर्ग से हमारे भावराज्य में चैतन्यता व आनन्द स्पंदित होने लगता है। गीता जी का अवलम्बन लेने पर व्यक्तित्व में शांति व संतुलन तथा सद्गुणों की अभिवृद्धि निश्चित है। इस विषय में स्वयं पुरुषोत्तम भगवान ने संसार के सभी पुरुषों को अर्जुन के माध्यम से आश्वस्त किया है।

जीवन के उद्देश्य की समझ

अद्वितीय, अतुल व्यक्तित्व के मानक श्रीकृष्ण का वचन है-

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।। (9.31)

अर्थात् "वह शीघ्र ही धर्मात्मा (सद्भावपूर्ण, संतुलित व्यक्तित्व युक्त) हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति का प्राप्त होता है।" अर्थात वह स्थिर शांत व्यक्तित्व युक्त हो जाता है। हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त (अनुगमनकर्ता व समर्पित) कभी नष्ट नही होता।" श्रीमद्भगवद्गीता का अनुगमनकर्ता भक्त कभी पतित, क्षुधित, भ्रमित व्यक्तित्वयुक्त नहीं हो सकता। यह केवल कोरा आश्वासन मात्र नहीं है अपितु गीता ज्ञान का अमृतपान करने वाले शंकर, रामानुज, शंकर देव, समर्थगुरु रामदास, छत्रपति शिवाजी, माधव विद्यारण्य, हरिहर बुक्का, महाराणा प्रताप, तिलक,

बिस्मिल, अरविन्द, विवेकानन्द, गाँधी, राधाकृष्णन आदि अगणित विराट व अतुल व्यक्तित्व इसके साक्षात् प्रमाण हैं। यदि यह कहा जाय कि गीतोक्त ज्ञान ने प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से भारतीय संस्कृति के व्यक्तित्व को अमृतत्व युक्त व मृत्युंजयी बनाया है तो अतिशयोक्ति नहीं है। भारतीय जनमानस में आचार्यों एवं संतों द्वारा तत्वज्ञान व भक्ति के जो प्रांजल भाव आरोपित किये, उन्हीं भावों ने यहाँ के आम जन के व्यक्तित्व को सत्याग्रही, सक्षम, संघर्षशील बनाया। इसी के बल पर हजारों वर्षों के झंझावतों को प्रसन्नतापूर्वक सहकर भारतीय संस्कृति आज भी अपने नित नवीन कलेवर में जीवंतता से खड़ी है जबकि उसके सम-सामयिक अनेक महान संस्कृतियाँ अपने देहात्मभाव के कारण पराभूत हो चुकी हैं। व्यक्तित्व की अवधारणा अपने वर्तमान स्वरूप में भले ही आधुनिक मनोवैज्ञानिक हो किन्तु मानव एवं उसका व्यक्तित्व तथा व्यक्तित्व से सम्बंधित प्रश्न अति प्राचीन है तथा मानव अस्तित्व के साथ ही सतत प्रवाहमान है। मानवता के समक्ष आदर्श वॉछित व्यक्तित्व की जो चुनौतियों वर्तमान समय में हैं, वे नयी नहीं हैं। इनका समुचित समाधान तथा व्यक्तित्व निर्माण सम्बंधी मार्गदर्शन हमें श्रीमद्भगवद्गीता से प्राप्त हो सकता है। भौतिकवाद व्यक्ति एवं समाज की भौतिक व एंद्रिक आवश्यकता पूर्ति हेतु व्यक्ति को तैयार करता है तथा व्यक्तित्व की एकांगी असत्य व भ्रमपूर्ण अवधारणा पर आधृत है। श्रीमद्भगवद्गीता में निहित व्यक्तित्व समवन्धी अवधारणा सर्वांगपूर्ण है। इससे अभिप्रेरित होकर सर्व कल्याणकारी आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव है। व्यक्तित्व की वर्तमान मनोवैज्ञानिक अवधारण की रिक्तताओं की पूर्ति करने एवं उनका पुनर्मूल्यांकन करने में श्रीमद्भगवद्गीता दीप स्तंभ का कार्य कर सकती है।॥

श्रीमद्भगवद्गीता में निहित व्यक्तित्व की अवधारणाः

व्यक्तित्व का अंग्रेजी पर्याय 'Personlity' शब्द लैटिन शब्द 'Persona' से उत्पन्न है। 'Persona' से ही 'Person' बना है जिसका अर्थ है व्यक्ति। Person शब्द से 'Personlity' तथा व्यक्ति से व्यक्तित्व शब्द बना है। व्यक्तित्व एवं पर्सनॉलिटी शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते हैं किन्तु व्यक्तित्व शब्द में जो गहन दार्शनिक गूढ़ता निहित है वह 'Personlity' शब्द में नहीं है। 'Personlity' शब्द के अर्थ में व्यक्तित्व वहीं तक है जो, जैसा दूसरों को दिखाई देता है। वर्तमान मनोविज्ञान भी व्यक्तित्व के इस सीमित अर्थ से आगे निकल चुका है तथा व्यक्तित्व के कई व्यापक अर्थ एवं परिभाषायें खोजी गई हैं। जैव-सामाजिक, राजनैतिक, जैव-दैहिक एवं समाकलित दृष्टिकोण से मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया। ये सभी दृष्टिकोण सीमित हैं तथा सापेक्षता से बाधित हैं। आधुनिक मनोविज्ञान अभी भी व्यक्तित्व की परिपक्व व सर्वांगपूर्ण परिभाषा नहीं दे पाया है।

Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.06, June,2025

आधुनिक मनोविज्ञान ने व्यक्तित्व को विभिन्न मनोवैज्ञानिक चरों यथा समायोजन (Adjustment), चित्तप्रकृति (Temperament), अद्वितीयता (Uniqueness) तथा गत्यात्मकता (Dynamic) के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है। 1937 में आलपोर्ट ने व्यक्तित्व की 49 परिभाषाओं का विश्लेषण करके 50वीं परिभाषा दी। आलपोर्ट (Allport, 1937) के अनुसार "व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं।" आलपोर्ट (Allport) की इस परिभाषा में व्यक्तित्व के भीतरी गुणों (Inner Qualities) तथा बाहरी गुण यानी व्यवहार दोनों को सम्मिलित किया गया है, परन्तु उन्होंने व्यक्तित्व के भीतरी गुणों पर तुलनात्मक रूप से अधिक बल डाला है।" (सिंह, 2017, p. 4) "वाल्टर मिसकेल (Walter Mischel, 1981) ने हाल ही में एक ऐसी परिभाषा दी है जो आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के बीच अधिक लोकप्रिय (Popular) हो पायी है तथा जिसमें अलपोर्ट तथा आइजेन्क की परिभाषा की कमी भी दूर हो गयी है क्योंकि इस परिभाषा में व्यक्तित्व के भीतरी गुणों (Inner) के अलावा व्यवहार पर भी समान रूप से बल डाला गया है। वाल्टर मिसकेल (Walter Mischel, 1981) के अनुसार, "प्रायः, व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन एवं संवेग भी सम्मिलित है), से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति के जिन्दगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।" (सिंह, 2017, p. 5), श्रीमद्भगवद्गीता के दार्शनिक उपदेशों में सन्निहित व्यक्तित्व सम्बन्धी अवधारणा अत्यन्त व्यापक है। इस अवधारणा के दायरे में आधुनिक मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सम्पूर्ण आयाम समाहित हैं। जिन मनोवैज्ञानिक चरों जैसे समायोजन, चित्त, प्रकृति, अद्वितीयता तथा गत्यात्मकता, के आधार पर व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है, उन सभी चरों पर श्रीमद्भगवद्गीता प्रकाश डालती है।

समाज और व्यक्ति का संतुलन

अर्थात्‌ सामाजिक समायोजन के आधार पर प्रकृष्ट एवं पतित व्यक्तित्व, चित्त प्रकृति के आधार पर सत, रज तथा तम गुणधर्मी व्यक्तित्व की श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट चर्चा है। तात्विक दृष्टि से सार्वभौम एक्य का प्रतिपादन करते हुये श्रीमद्भगवद्गीता प्रकृति के संयोग से अज्ञानजनित अद्वितीयता की समर्थक है। गीता का गत्यात्मकता में भी विश्वास है। श्रीमद्भगवद्गीता का यह विश्वास है कि व्यक्तित्व में संयम वैराग्य तथा मनोअभ्यास के द्वारा सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता है। जीव अपने स्वरूप के अज्ञान के कारण स्वयं को मनोदैहिक समझता है, यही उसके अभ्युदय एवं निःश्रेयस प्राप्ति में बाधक

एवं व्यक्तित्व विखण्डन का मूल कारण है। श्रीमद्भगवद्गीता की तात्विक दृष्टि वर्तमान मनोविज्ञान के पास नहीं है। आधुनिक मनोविज्ञान ने स्वयं को इंद्रियानुभविकता की सीमा में मर्यादित कर लिया है। सीमित लौकिक दृष्टिकोण होने के कारण उसके चिंतन सीमाबद्ध हो जाते हैं तथा निष्कर्ष भी अपूर्ण, सीमित, सापेक्ष एवं कालबाधित होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का त्रिगुण सिद्धान्त, कर्मफल व पुनर्जन्म सिद्धान्त, जीवात्मा की अवधारणा आदि अनेक संप्रत्यय समायोजन, चित्त प्रकृति, वैयक्तिक भिन्नता तथा गत्यात्मकता जैसी मनोवैज्ञानिक अवधारणाओं को और अधिक स्पष्ट व तर्कसंगत बनाने में सक्षम हैं। वर्तमान मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण इंद्रियानुभविक है। गीता की भाषा में कहें तो हम कह सकते हैं कि आधुनिक मनोविज्ञान में व्यक्तित्व सम्बन्धी अवधारणा अपरा प्रकृति तक ही सीमित हैं और चेतन पराप्रकृति एवं इन दोनों प्रकृतियों के नियन्ता एवं धारण करने वाले तथा इनके रूप में अभिव्यक्त होने वाले परम चैतन्य विराट व्यक्तित्वधारक ईश्वर में उसे विश्वास नहीं है। बिना तार्किक अनुमान का अवलम्बन लिये विशुद्ध भौतिक विज्ञानों की भी यात्रा आगे नहीं बढ़ सकती। गीता का तत्वज्ञान निराधार कल्पना नहीं अपितु बौद्धिक प्रमाणिक अनुभूतियों पर आधारित अध्यात्म विज्ञान है। आधुनिक विज्ञान एवं मनोविज्ञान को अपनी सीमा का अतिक्रमण करके अनेक अनसुलझे रहस्यों का उद्घाटन करने हेतु श्रीमद्भगवद्गीता जैसे यथार्थ आध्यात्मिक शास्त्र का सहयोग लेना चाहिये तथा मनोविज्ञान व दर्शन के स्वस्थ विमर्श एवं ज्ञान, अनुभव व तकनीकियों का विनिमय होना चाहिये। इस विषय में सर विलियम सेसिल डेम्पीयर का विचार ध्यातत्य हैं। वह कहते हैं "विज्ञान अपने स्वरूप में एवं अपनी मूलभूत परिभाषाओं में सूक्ष्मीकरण मात्र है। वह अपनी सारी चिरवर्धमान शक्ति के बावजूद समग्र अस्तित्व का प्रतिनिधित्व नहीं करता। विज्ञान अपने सहज लब्धक्षेत्र का अतिक्रमण कर सकता है, ताकि कुछ अन्य समकालीन विचार पद्धतियों की तथा धर्मशास्त्रों में विश्वास व्यक्त करने वाले मतवादों की, उपयोगी आलोचना कर सकता है। लेकिन जीवन का सम्पूर्ण एवं सुस्थिर दर्शन प्राप्त करने के लिए केवल विज्ञान ही नहीं बल्कि नीतिशास्त्र, कला एवं दर्शनशास्त्र की भी आवश्यकता है।

हमें ईश्वरीय रहस्य की झलक एवं परमात्मा के साथ सम्पर्क के भाव की भी आवश्यकता है जो धर्म का मूल आधार है।" (बुधानन्द, 2012, p. 83) श्रीमद्भगवद्गीता में समस्त मनोवैज्ञानिक प्रश्नों का समाधान है किंतु उसकी शैली दार्शनिक है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मानव व्यक्तित्व स्थूल शरीर, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन एवं बुद्धि का जटिल संयोग है। इनके आपसी समामेलन से उत्पन्न व्यवहार मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र है। गीता में इन सबका तथा इनके स्वरूप एवं व्यवहार का

प्रमाणिक ज्ञान उपलब्ध है इसके साथ ही श्रीमद्भगवद्गीता इन सबके मूल स्रोत अव्यक्त सत्ता के विषय में भी बताती है जिसका ज्ञान होने पर सभी अनुत्तरित गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं। इसके माध्यम से व्यक्तित्व की वास्तविकता एवं विराटता को समझा जा सकता है। हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व अव्यक्त से ही प्रकट होता है तथा लौकिक व्यक्तित्व अव्यक्त में ही लीन हो जाता है। श्रीकृष्ण कहते हैं-

"अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
(2.28)

अर्थात् - "हे भारत! समस्त प्राणी जन्म से पूर्व और मृत्यु के बाद अव्यक्त अवस्था में रहते हैं।" इंद्रियानुभविक नास्तिक ज्ञानवादी अव्यक्त अवस्था को नहीं मानते। जन्म एवं मृत्यु के मध्य की अभिव्यक्त अवस्था को ही व्यक्तित्व समझते हैं। जबकि इतना तो उनका भी मानना है कि व्यक्तित्व का अधिकाँश प्रकट नहीं है। वे चेतना को प्राकृतिक तत्वों के साम्य से उत्पन्न मानते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता जन्म व मृत्यु के मध्य के व्यक्त व्यक्तित्व को सतत परिवर्तनशील व नाशवान मानती है तथा यह मानती है कि अव्यवत्त आत्मा का आश्रय लेकर ही प्राकृतिक पदार्थ एक निश्चित साम्यावस्था पाकर किसी व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण मानवता को उसके वास्तविक व्यक्तित्व के विषय में बोध कराती है किंतु अपने मत को स्वीकार करने हेतु बाध्य नहीं करती। श्रीकृष्ण का मानवीय निर्णय क्षमता पर पूर्ण विश्वास है, वे चिंतन, तर्क, प्रश्न-प्रतिप्रश्न के पोषक हैं। अर्जुन ने भी उनकी बात को अंधभक्त की भाँति नहीं स्वीकार किया अपितु बौद्धिक समाधान होने पर ही उनको स्वीकार किया। श्रीकृष्ण ने गीता उपदेश के बाद उनकी बात मानने अथवा न मानने की पूर्ण स्वतंत्रता अर्जुन को दी है। वे कहते हैं-

विमृश्यैतदषेषेण यथेच्छसि तथा कुरु । (18.63)

अर्थात्- "इस पर पूर्ण विचार (विमृश्य) करने के पश्चात तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा तुम करो।" श्रीमद्भगवद्गीता विमर्श का ग्रंथ है, बौद्धिक मंथन का ग्रंथ है। अतः गीता ज्ञान के आलोक में आधुनिक मनोविज्ञान एवं श्रीमद्भगवद्गीता के मध्य संवाद एवं विमर्श की आवश्यकता है। यह संवाद गीता जैसे ग्रंथ के आध्यात्मिक ज्ञान का व्यवहारिक जीवन में अनुप्रयोग सिखायेगा। जीवन जीने एवं व्यक्तित्व निर्माण की कला सिखायेगा। मानवीय व्यक्तित्व के विचार, भाव एवं आत्मिक पक्षों में तारतम्य बिठाकर पुरुष को पुरुषोत्तम बनायेगा। इस संवाद से मनोविज्ञान अपने अधूरेपन को पूर्ण कर सकता है। सान्त से अनन्त की ओर कदम बढ़ा सकता है। इस प्रकार का विमर्श जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगी होगा। इससे धर्म को नवीन वैज्ञानिक कलेवर प्राप्त हो सकेगा तथा विज्ञान नैतिक, मूल्यपरक एवं कल्याणमय हो सकेगा। ज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले एक वर्ग विशेष को भले ही अपने रूढ़िवादिता

व पूर्वाग्रह के कारण श्रीमद्भगवद्गीता जैसे दार्शनिक ग्रंथ अस्वीकार्य लगे लेकिन श्रीमद्भगवद्गीता जैसे सर्वसमावेशी ग्रंथ में किसी के लिये नकारात्मक भाव नहीं है।

निष्कर्ष

श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा ग्रंथ है जो न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण और नैतिक विकास के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह ग्रंथ मनुष्य को जीवन के मूलभूत सिद्धांतों, कर्तव्य, धर्म, और आत्म-साक्षात्कार की शिक्षा देता है। आज के आधुनिक और भौतिकवादी समाज में, जहाँ तनाव, प्रतिस्पर्धा और नैतिक पतन की चुनौतियाँ हैं, गीता का ज्ञान व्यक्ति को आंतरिक शक्ति, संतुलन और दिशा प्रदान करता है। गीता का मुख्य संदेश है कि व्यक्ति को निस्वार्थ भाव से अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" (अध्याय 2, श्लोक 47) के माध्यम से यह सिखाया गया है कि कर्म करना ही मनुष्य का अधिकार है, फल की इच्छा नहीं। यह सिद्धांत व्यक्ति को तनाव और चिंता से मुक्त करता है और उसे धैर्य और संयम के साथ कार्य करने की प्रेरणा देता है। इसके अलावा, गीता आत्म-जागरूकता, आत्म-विश्वास और आत्म-सुधार पर जोर देती है।

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्" (अध्याय 6, श्लोक 5) के माध्यम से यह बताया गया है कि व्यक्ति को अपने आपको स्वयं उठाना चाहिए और अपने भीतर की शक्ति को पहचानना चाहिए। गीता का ज्ञान व्यक्ति को नैतिक मूल्यों, समानता, और अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। यह समाज में भेदभाव और हिंसा को समाप्त करने की प्रेरणा देता है। साथ ही, यह व्यक्ति को समाज के प्रति जिम्मेदार बनाता है और उसे नेतृत्व के गुण सिखाता है।

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः" (अध्याय 3, श्लोक 21) के माध्यम से यह स्पष्ट है कि श्रेष्ठ व्यक्ति का आचरण समाज के लिए एक मार्गदर्शक होता है।

अंततः, श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्तित्व निर्माण के लिए एक संपूर्ण मार्गदर्शक है। यह व्यक्ति को आंतरिक शांति, नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा और आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करती है। आज के समय में, जब मनुष्य भौतिक सुखों और तनावों में उलझा हुआ है, गीता का ज्ञान उसे जीवन के वास्तविक उद्देश्य की ओर ले जाता है और एक संतुलित, सार्थक और सफल जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अड़गडा़नन्द, स्वामी जी (2014), यथार्थ गीता मुम्बईः श्री परमहंस स्वामी अड़गडा़नन्द जी आश्रम ट्रस्ट।

- दत्त एच0 (2016), गीता द्वारा आदर्श व्यक्तित्व निर्माण, जर्नल आॅफ एडवांस एण्ड स्कालरली रिसर्च इन एलाइड एजूकेशन 11 (22), त्मजतपमअमक तिवउ जजचध्ध्ण्पहदपजमकण्पद
- द्विवेदी, जे0के0 (2020), श्रीमद्भगवतगीता में समाजवाद, अधिगम शैक्षिक बोध एवं संदेश पत्रिका, 30-33
- लल्ला, ए0 (2020) कालेज के छात्रों के पाठ्यक्रम पर भगवद्गीता का प्रभाव एक अध्ययन, जनरल आफ रिलिजन एण्ड हेल्थ।
- पूरोहित प्रेमप्रकाश (2015), श्रीमद्भवतद्गीता में निहित तत्वों का वर्तमान निर्देशन एवं परामर्श प्रणाली में उपयोगिता का एक विवेचनात्मक अध्ययन, पीएच0डी0 शिक्षाशास्त्र विभाग, कुमायू विश्वविद्यालय।
- मिश्र, बी0एन0 (2018), तनाव प्रबन्धन में श्रीमद्भगवत्गीता की उपादेयता, शोध मिमांसा ट (ग्टप्प्), अंक-प् 72-75
- रामसुखदास, स्वामी जी (सं0 2072), श्रीमद्भगवद्गीता साधक संजीवनी हिन्दीटिका) गीता प्रेस।
- सोनकर, अर्जुन (2019), श्रीमद्भवतगीता में निहित जीवन दर्शन एवं शैक्षिक विचारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, पीएच0डी0 शिक्षा शास्त्र विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- सिंह, अरूण कुमार (2015), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल, बनारसी दास, पब्लिकेशन दिल्ली।

*Corresponding Author: Satish Kumar
E-mail: sateeshvarma91@gmail.com
Received: 04 May,2025; Accepted: 20 June,2025.
Available online: 30 June, 2025
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License